International Journal of Applied Research 2023; 9(10): 112-115

**ISSN Print:** 2394-7500
**ISSN Online:** 2394-5869
**Impact Factor (RJIF):** 8.4
IJAR 2023; 9(10): 112-115
www.allresearchjournal.com
Received: 05-08-2023
Accepted: 09-09-2023

**प्रो0 रश्मि कुमार**
प्रोफेसर, हिंदी और आधुनिक भारतीय भाषा विभाग, लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ, उत्तर प्रदेश, भारत

**Corresponding Author:**
**प्रो0 रश्मि कुमार**
प्रोफेसर, हिंदी और आधुनिक भारतीय भाषा विभाग, लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ, उत्तर प्रदेश, भारत

# प्रेमचन्द के उपन्यासों में सामाजिक समस्याओं का निरूपण

## प्रो0 रश्मि कुमार

**सारांश**
प्रेमचन्द के पात्र भारतीय जनता की सांस्कृतिक विशेषताओं को रखते हुए सच्चे भारतीय हैं, तो दूसरी ओर साधारण मानवीय भावनाओं से परिपूर्ण मानव भी हैं। पारस्परिक सहानुभूति, ईर्ष्या, द्वेष, प्रेम आदि मानव–मात्र के चिरन्तन गुणों से युक्त उनके पात्र कभी–कभी विश्व–उपन्यासकारों के उत्कृष्ट पात्रों के समान सार्वलौकिक बन जाते हैं। 'गोदान' के पात्रा सचमुच सजीव मनुष्य हैं।प्रेमचन्द ने विधवा समस्या का चित्रण प्रतिज्ञा, प्रेमाश्रम और वरदान उपन्यास में किया है। आर्थिक मुसीबत के कारण ही प्रेम की समस्या उपस्थित होती है और आर्थिक संकट के कारण ही मनुष्य के रुप में' हम देखते है कि बाप बेटी को बेचता है ओर ससुर बहु को बेचने के लिए प्रस्तुत हो गया है। प्रेमचन्द के 'गबन' उपन्यास में भी अनमेल विवाह, वेश्या समस्या तथा विधवा समस्या अंकित है। 'प्रेमाश्रम' में राजनीतिक समस्या, हिन्दू–मुस्लिम एकता की समस्या का चित्रण है। 'रंगभूमि' में धनी–गरीब, किसान जमींदार, पूंजीपति–मजदूर के बीच संघर्ष की कथा है। उन्होंने हिन्दू–मुस्लिम, सिख, साइ सभी को एक सूत्र में बांधने का प्रयास किया है। कायाकल्प' में हिन्दू–मुस्लिम वेंमनस्य तथा सांप्रदायिक समस्या का निरुपण किया है। 'कर्मभूमि' में हरिजन उद्धार, हिन्दू–मुस्लिम ऐक्य तथा नारी जागरण कि समस्या को उठाया है। दादा कामरेड, देशद्रोही आदि में मिल मालिक तथा मजदूर का संघर्ष है। इसके साथ साथ प्रेम की समस्या तथा विधवा समस्या का चिञिण है साम्प्रदायिक समस्या का चित्रण 'झूठा सच' में है, विभाजन पूर्व और विभाजन के बाद की स्थिति को लेकर लिखी गई कथा द्वारा तत्कालीन परिस्थिति का सजीव चित्रण दिया गाया है।

**कूटशब्द :** प्रेमचन्द, पात्र, भारतीय, जनता, सांस्कृतिक और सार्वलौकिक।

## प्रस्तावना
आज हमारे साहित्य में उपन्यास को, जो सबसे अधिक जनतंत्रीय साहित्यिक विधा है, वह स्थान प्राप्त नहीं हुआ है जो उसे प्राप्त होना चाहिए। उपन्यास सबसे अधिक लोकप्रिय साहित्य–विधा है।उपन्यास मनुष्य के सामाजिक, वैयक्तिक अथवा दोनों प्रकार के जीवन का रोचक साहित्यिक प्रतिरूप है, जो प्रायः एक कथा–सूत्र के आधार पर निर्मित होता है। सामाजिक एवं वैयक्तिक जीवन उपन्यास के विषय हैं। इनमें किसी एक को अथवा दोनों को उपन्यास का मुख्य आधार बनाया जा सकता है। वैसे व्यक्ति और समाज परस्पर अच्छेद्य बन्धनों से बंधे होते हैं। अतः साहित्य में भी उनको सम्बद्ध ही रखना पड़ता है। प्रत्येक उपन्यास में व्यक्ति और समाज का अध्ययन न्यूनाधिक मात्रा में आ ही जाता है। किन्तु आज इनमें किसी एक को मुख्य विषय बनाकर उपन्यास लिखे जाने लगे हैं। उपन्यास में प्रतिपादित जीवन चाहे सामाजिक हो चाहे वैयक्तिक, वह सामान्य या विशेष–विशाल या सीमित–हो सकता है। जीवन के विविध अंगों का निरीक्षण कर उसका समग्र रूप उपस्थित करने वाले कतिपय बृहत्काय उपन्यास हमें विश्व–साहित्य ने प्रदान किये हैं। दूसरी ओर ऐसे उपन्यास भी हैं, जिनमें सामाजिक जीवन की दो–एक समस्या का, अथवा व्यक्ति के किसी विशेष मनोव्यापार का विश्लेषण किया जाता है। प्रथम श्रेणी के उपन्यासों का क्षेत्र अधिक विशाल होता है, तो दूसरी श्रेणी के उपन्यासों में, क्षेत्रा के सीमित होने पर भी, अगाध अध्ययन होता है।
रोचकता उपन्यास का अनिवार्य तत्त्व है। समाजशास्त्र, इतिहास, राजनीति आदि समाज–सम्बन्धी सभी शास्त्रों में जीवन का आंशिक प्रतिरूप मिलता ही है। पर वह जीवन उपन्यास में प्रतिबिम्बित जीवन से बिलकुल भिन्न होता है, क्योंकि जीवन उनमें लेखा–मात्र बनकर रह जाता है। कुछ घटनाएं, कुछ तिथियां और कुछ निर्जीव मानव ही इतिहास आदि में जीवन का स्वांग रचते हैं। उनमें जीवन के स्पन्दन और विकारों के संघर्ष का अभाव रहता है। किन्तु उपन्यास में लेखक को पात्रों में ही नहीं, प्रत्येक निर्जीव वस्तु में भी प्राण–प्रतिष्ठा करनी पड़ती है। कला में वस्तु की साधारण भौतिक सत्ता के अतिरिक्त उसकी एक अलग रागात्मिक सत्ता भी होती है, जो अधिक महत्त्वपूर्ण है। उपन्यास एक कलात्मक रचना है, अतः यह रागात्मिकता ही उसकी आत्मा है, और इसके बिना कला का मूल्य सन्दिग्ध हो जाता है।

उच्च कोटि के उपन्यासों में रागात्मिक तत्त्व ही उनकी रोचकता और औत्सुक्य को स्थायी रूप देता है। रोचकता और औत्सुक्य को आदि से अन्त तक बनाये रखने के लिए घटनाओं और भावों को श्रृंखलाबद्ध कर रखना अत्यन्त उपयोगी है। किसी एक भावधारा का क्रमिक विकास मन को जैसे प्रभावित कर सकता है, कुछ असम्बद्ध भावों का समूह नहीं कर सकता। अतः एक भावधारा के क्रमिक विकास के ध्येय से उपन्यास में प्रायः सभी घटनाओं को एक कथा–सूत्र से बांधा जाता है। हर भाषा के आरम्भकालीन उपन्यासों में और कुछ चाहे हो या न हो, कथा अवश्य होती थी, और अन्य तत्त्वों से बढ़कर उसपर ध्यान दिया जाता था। लेकिन आधुनिक उपन्यासों में कथा सीमित एवं शिथिल होती जा रही है। अब विषय को संगठित करने के लिए आवश्यक उपकरण के रूप में ही उसका महत्त्व है, अपने–आप में उसका कोई मूल्य नहीं रहा। नवीन उपन्यासों में जीवन का जो विश्लेषणात्मक अध्ययन होता है, वह कथा को गौण बना देता है। किन्तु यह निश्चित है कि वैकारिक एकता तथा शिल्प–चारुता के सुरक्षितत्व के लिए कथा कम उपयोगी नहीं है।

## जीवन का कलात्मक रूप

### अनुभव

वस्तुतः उपन्यास में जो है, वह जीवन नहीं, जीवन का अनुभव है। जीवन जो कुछ हमारे सामने रखता है वह सब अनुभव नहीं है। अनुभव सदा ही व्यक्तिगत चेतना पर अवलम्बित रहता है। हमारे लिए जीवन का उतना ही अर्थ रहता है, जितना कि हम अपनी चेतना द्वारा अनुभूत करते हैं। किसी वस्तु या व्यक्ति के प्रति अथवा जीवन के किसी अंग के प्रति सबकी मानसिक प्रतिक्रियाएं समान नहीं होतीं, क्योंकि उनकी अनुभूति की शक्ति भिन्न हेाती है, उनके दृष्टिकोण भिन्न होते हैं। हर व्यक्ति अपनी बौद्धिक चेतना और हार्दिक सहानुभूति के अनुसार जीवन के कुछ विशिष्ट अंशों को अधिक सार्थक पाता है ; अपने दृष्टिकोण के अनुसार उनका अर्थ निकाल लेता है। अतः अनुभव पंचेन्द्रियों का ही विषय न रहकर बुद्धि और हृदय का भी विषय बन जाता है। पंचेन्द्रियों द्वारा प्राप्त स्थूल ज्ञान–राशि बुद्धि और हृदय की ग्रहण–शक्ति के अनुसार ही अनुभव का रूप धारण करती है। यही अनुभव उपन्यास का विषय है। समाचारपत्रों और इतिहास–ग्रन्थों में जिन घटनाओं का वर्णन होता है, उनमें अनुभव नहीं रहता; इसलिए वे निर्जीव होते हैं। पर उपन्यास की घटनाएं, पात्र अनुभव सिद्ध होने के कारण सजीव होते हैं।व्यक्तिगत रूप में अनुभूत जीवन को सार्वजनिक बनाने में ही उपन्यासकार का साफल्य निहित है। जो–जो पात्र और घटनाएं उपन्यासकार को प्रभावित करती हैं, उनको वह हमारे सम्मुख रखता है ताकि उन पात्रों और घटनाओं से हमारा सीधा सम्बन्ध स्थपित हो जाय। लेखक द्वारा निर्मित औपन्यासिक लोक का लेखक की अनुभूतियों से अपना अलग अस्तित्व होता है।

## उपन्यास : मनुष्य का विश्लेषण

जीवन को सुधारने के ध्येयवादी सिद्धान्त और जीवन को प्रतिबिंबित करने के वस्तुवादी सिद्धान्त के अतिरिक्त उपन्यास ने और एक वृत्ति को भी अपनाया है। वह है जीवन के अध्ययन का विश्लेषणवादी सिद्धान्त। विश्लेषणवाद वैज्ञानिक युग की देन है, और कला के क्षेत्र में बौद्धिकतावादी के शासन का परिचायक है। यूरोप में उन्नीसवीं शती में ही–विशेषकर उत्तरार्द्ध में–साहित्य धार्मिक एवं नैतिक विचार–पद्धतियों का तिरस्कार करने लगा। नैतिक मूल्यों के परिवर्तन ने जीवन के प्रति साहित्यकार, के दृष्टिकोण को भी बदल दिया। विज्ञान की विविध शाखाओं की अभूतपर्वू उन्नति का परिणाम यह हुआ कि मनुष्य ने अब तक जिन वस्तुओं को वास्तविक माना था उनमें अधिकांश को अवास्तविक पाया; उन्हें जिन रूपों में समझा था, उन्हें गलत पाया। वास्तविकता की नयी–नयी जो श्रृंखलाएं दिखायी पड़ीं, उन्हें पकड़कर नये मार्ग से अग्रसर होते हुए मनुष्य को नये मापदण्डों के आधार पर जीवन का पुनः मूल्यांकन करना आवश्यक हो गया। धार्मिक, सामाजिक और आर्थिक दृष्टिकोणों से जीवन के जितने सिद्धान्त बनाये गये थे, उनकी सार्थकता में सन्देह होने लगा और उनके पुनः परीक्षण की आवश्यकता ज्ञात हुई। विचार–क्षेत्र की इस क्रान्तिकारी प्रवृत्ति का प्रभाव उपन्यास–साहित्य पर भी पड़ा। उपन्यासकार को यह स्पष्टतः विदित हो गया कि कोई भी आदर्श समयातीत नहीं होता। परिस्थितियों के अनुसार आदर्श के भी रूप बदलते रहते हैं। अगर कोई आदर्श चिरन्तन कहा जाता है, तो वह या तो अप्रायोगिक रहता है, या किसी समय अपनी चिरन्तन प्रकृति खो बैठता है। इसीलिए समयातीत आदर्श के आधार पर लिखित रचनाएं भी सदा समान सम्मान की पात्र नहीं रहतीं। लेकिन कोई शाश्वत आदर्श प्रस्तुत न करने वाली कितनी ही रचनाएं जो मनुष्य को समझने में सहायक हैं, शाश्वत मूल्य की सिद्ध हो चुकी हैं। अतः नये दृष्टिकोण के अनुसार उपन्यासकार का कर्तव्य जीवन को सुधारना नहीं, उसे समझना है। प्रथम–प्रथम फ्रांस में प्रकृतिवादियों ने इस दृष्टिकोण को अपनाकर जीवन का वैज्ञानिक अध्ययन किया। नैतिक मूल्यों पर विशेष आस्था न रखने वाले प्रकृतिवादियों के पास जीवन को प्रेरणा देने वाला कोई दर्शन न था, किन्तु उनके उपन्यासों की कलात्मक मनोहारिता असन्दिग्ध है। इनकी और वाद के कलावादियों की निरुद्देश्य रचनाओं की आलोचकों ने कठोर आलोचना भी की है। सार्त्र ने कहा है, ''निरूपयोगिता की चरम सीमा ही सुन्दरता थी।'' बीसवीं सदी में फ्रांस और इंगलैण्ड में मनोवैज्ञानिक उपन्यास की जो परम्पराएं प्रचलित हुई हैं, उनमें भी नैतिकता का कोई मूल्य नहीं है। परन्तु इनमें मनुष्य को समझने का जो प्रयत्न है, वह प्रकृतिवादियों के ढंग से अधिक स्वस्थ है।

## प्रेमचन्द की मुख्य प्रवृत्तियां

प्रेमचन्द विषय तथा अभिव्यंजन की दृष्टि से अपने पूर्ववर्ती उपन्यासकारों से बहुत आगे बढ़े थे। उपन्यास–क्षेत्र में प्रेमचन्द के पदार्पण करने तक का हमारा उपन्यास– साहित्य चिन्तन रहित, काल्पनिक, अवास्तविक, रहस्यमय तथा विवेकहीन रहा है। पर प्रेमचन्द के काल में देश की सामाजिक जागृति एवं राजनीतिक चेतना के कारण अवस्था ऐसी हो गयी थी कि उस समय हमें अपने वास्तविक रूप से अवगत करने वाले, अपनी अन्तर्निहित शक्तियों का आभास देने वाले जागरण के साहितय की आवश्यकता हुई–ऐसे साहित्य की, जो विचार में स्वतंत्र हो, चिन्तन में संतुलित हो, जीवन की अवरोधक शक्तियों के प्रति उग्र हो, दीन–दरिद्र जनता की हीन दशा से विक्षिप्त हो, और सर्वोपरि भारत की मूक जनता के जीवन को ही प्रदर्शित करके, उसकी आशाओं और अभिलाषाओं को वाणी देनेवाला हो। और इन्हीं अपेक्षाओं को पूर्ति करते हुए उपन्यासकार प्रेमचन्द प्रत्यक्ष हुए, और उनकी महान यात्रा आरंभ हुआ। उन्होंने चरित्र, वातावरण, शैली, उद्देश्य आदि के क्षेत्रों में मौलिक प्रवृत्तियों का परिचय दिया, वे इन्हीं के उपन्यासों तक सीमित न थीं, परवर्ती उपन्यास–साहित्य के लिए भी निर्णायक प्रेरणा सिद्ध हुई।

## रोमांस

प्रेमचन्द के पहले समाज की समस्यओं का चर्चा करने वाले उपन्यासों में भी रोमांटिक कल्पना का आधिक्य था। रोमांस को उपन्यास का मुख्य विषय बनाना एक सिद्धांत–सा हो गया था। प्रेमचन्द के आगमन से इस सिद्धांत को धक्का लगा। 'प्रेमा' से 'मंगलसूत्रा' तक के उपन्यासों में प्रेमचन्द ने भारतीय सामाजिक जीवन की एक–एक समस्या को लेकर उसका विवेचन किया। 'प्रेमा' में विधवा–विवाह का, 'सेवा–सदन' में दहेज और अनमेल विवाह के दुष्परिणामों का, 'प्रेमाश्रम में किसान–जमींदारों के पारस्परिक संधर्ष का, 'रंगभूमि' में भारत के स्वातंत्रय और

जन–जागृति का, 'कायाकल्प' में हिन्दू–मुस्लिम समस्या का तथा 'निर्मला', प्रतिज्ञा और 'गवन' में भारतीय नारी की विकट समस्याओं का प्रतिपादन करते हुए प्रेमचन्द ने अपने अंतिम पूर्ण उपन्यास 'गोदान' में भारतीय किसान की करुण कथा प्रस्तुत की। भारतीय जीवन का शायद ही कोई अंग उनकी दृष्टि से छूटा है, अतः उनके उपन्यास भारतीय समाज के अध्ययन के लिए प्रायः पूर्ण और विश्वस्त माध्यम है।

## मानव जीवन का अध्ययन

प्रेमचन्द के पात्रा भारतीय जनता की सांस्कृतिक विशेषताओं को रखते हुए सच्चे भारतीय हैं, तो दूसरी ओर साधारण मानवीय भावनाओं से परिपूर्ण मानव भी हैं। पारस्परिक सहानुभूति, ईर्ष्या, द्वेष, प्रेम आदि मानव–मात्र के चिरन्तन गुणों से युक्त उनके पात्रा कभी–कभी विश्व–उपन्यासकारों के उत्कृष्ट पात्रों के समान सार्वलौकिक बन जाते हैं। 'गोदान' के पात्र सचमुच सजीव मनुष्य हैं।प्रेमचन्द ने विधवा समस्या का चित्रण प्रतिज्ञा, प्रेमाश्रम और वरदान उपन्यास में किया है। सेवा सदन में वेश्या जीवन, दहेज प्रथा, अनमेल विवाह तथा स्त्री शिक्षा की समस्या चित्रित की है। आर्थिक मुसीबत के कारण ही प्रेम की समस्या उपस्थित होती है और आर्थिक संकट के कारण ही मनुष्य के रुप में' हम देखते है कि बाप बेटी को बेचता है ओर ससुर बहु को बेचने के लिए प्रस्तुत हो गया है। प्रेमचन्द के 'गबन' उपन्यास में भी अनमेल विवाह, वेश्या समस्या तथा विधवा समस्या अंकित है। 'प्रेमाश्रम' में राजनीतिक समस्या, हिन्दू–मुस्लिम एकता की समस्या का चित्रण है। 'रंगभूमि' में धनी–गरीब, किसान जमींदार, पूंजीपति–मजदूर के बीच संघर्ष की कथा है। उन्होंने हिन्दू–मुस्लिम, सिख, साइ सभी को एक सूत्र में बांधने का प्रयास किया है। कायाकल्प' में हिन्दू–मुस्लिम वैमनस्य तथा सांप्रदायिक समस्या का निरुपण किया है। 'कर्मभूमि' में हरिजन उद्धार, हिन्दू–मुस्लिम ऐक्य तथा नारी जागरण कि समस्या को उठाया है। 'गोदान' में प्रधान रूप से किसान वर्ग की समस्या चित्रित हुई है। प्रेमचन्द के उपन्यासों मे ं राजनीति के साथ सामाजिक समस्याओं का समन्वय देखने को मिलता है। दादा कामरेड, देशद्रोही आदि में मिल मालिक तथा मजदूर का संघर्ष है। इसके साथ साथ प्रेम की समस्या तथा विधवा समस्या का चित्रण है साम्प्रदायिक समस्या का चित्रण 'झूठा सच' में है, विभाजन पूर्व और विभाजन के बाद की स्थिति को लेकर लिखी गई कथा द्वारा तत्कालीन परिस्थिति का सजीव चित्रण दिया गाया है। 'अप्सरा का शाप' में पुरुष प्रधान समाज पर व्यंग्य किया गाया है। 'बारह घण्टे' में सा विधवा बिनी और विधूर फेंटम का मिलन श्मशान में करवाकर दो समान विरही की अतृप्त भावना की तृप्त करने का मौका दिया गया है। 'क्यों फसे' में सेक्स की समस्या का चित्रण है। 'गीता पार्टी कामरेड' में नायिका विद्रोह की कथा चित्रित करके गीता के सम्पर्क से भावरिया का हृदय परिवर्तन कैसे हुआ यह चित्रित किया गया है। 'दिव्या' में नारी जीवन की समस्या वर्ग भेद के द्वारा खड़ी कर दी है।' अमिता' में निर्दोष, निश्चल बालिका के द्वारा अशोक का हृदय परिवर्तन दिखा कर उन्होंने विश्व शांति का संदेश दिया है। इन दिनों में सब से बडा साम्य यही रहा है कि ये दोनों मानवता के पुजारी थे। इन्होंने मिल मालिक ओर मजदूर, किसान ओर जमीनदर, धनी ओर निर्धन, शिक्षित ओर अशिक्षित, बच्चे युवा और वृद्ध, सभी वर्ग के चित्र प्रस्तुत किया है। इतना साम्य होते हुए भी दोनों का कथा शिल्प विषमता भी रखता है।

प्रेमचन्द के कथानकों में मजबूरी, दिनता एवं कौतूहल है। गांव की टूटी–फूटी एवं जर्जरित झोपडियों, कुछ गाय बछड़े, भैंसे और इससे अधिक यदि उसके पास समृद्धि है तो दो चार बीघे जमीन, जिसमें वे खेती करते है। बेचारे ग्रामीण एडी से चोटी तक का पसीना एक करके मजदूरी करते है ं, परन्तु उनके भाग्य में परपेट भोजन भी कहा है? दिन दुःखी, असहाय निर्धन, फटेहाल सतत् श्रमके कारण पसीने से तरबतर भोले–भाले ग्रामीण निरन्तर अभावों में जीवन व्यतीत करते हैं, इतना ही नहीं धनिक वर्ग से दबते रहते है ं, पिसते रहते हैं। प्रेमचन्द ने विशेष रूप से भारतीय ग्राम और ग्रामीण जनता की जिंदगी, उनकी रोजमर्रा की समस्या एवं संघर्षो का मार्मिक चित्रण किया है। इसी तरह प्रेमचन्द ने भी वर्ग भेद एवं वर्ण भेद का विरोध किया है। मजदूर और मिल मालिक संघर्षों का चित्रण कर शोषण प्रथा दूर करने का प्रयास किया है। समाज में व्याप्त दास प्रथा को समूल मिटा देने की उनकी तीव्र इच्छा थी। नारी जीवन के वे उद्धारक रहे। नारी पति की गुलाम नहीं, परन्तु सहचरी है। उन्होंने समाजिक एवं राजकीय परिस्थिति का यथार्थ चित्रण चित्रित किया है। जीवन की करुणा, वेदना, व्यथा, पीड़ा एवं बेचेनी प्रेमचन्द के चिंतन की ठोस को लेकर आधार भूमि थी। उन्होंने यथार्थ घटनाओ ं से ही प्रेरणा पाकर कथा साहित्य की रचना की है। मनुष्य जो मधुर स्वप्न लोक में विचरण करता है, वह अनेक इच्छा, आकांक्षा एवं महत्वकांक्षा को पूरी करने के लिए करता है। अपनी कल्पना एव ं स्वप्न को साकार करने के लिए प्रयत्न करता है परन्तु उसका स्वप्न साकार नहीं होता तब हताशा हो जाता है। ग्रामीण किसान सतत् श्रम करके निजी ंवसा बन जाते है। परिश्रम से जर्जरित, क्षुधा से पीडित अर्ध नग्न, चिंता से ग्रस्त–निराशा से घिरा हुआ जीवन व्यतीत करते हैं। प्रेमचन्द में मानवीय पक्ष अधिक विकसित हुआ है। ''प्रेमचन्द की अभिव्यक्ति अनुभूति की अभिव्यक्ति है। एक किसान के रुप में उन्होंने दुःख, दर्द को झेला है। उनका अनुभव धनिया के द्वारा इस प्रकार प्रकट हुआ है–'इस घर में आकर उसने क्या नहीं। यहा ं स्पष्ट हो जाता झेला' आज क्यों नींद में सोये हुए हो ?'' है कि पेमचन्दजी ने अर्थ–संकट में जीवन व्यापन किया था। अतः यहा अभिव्यक्ति प्रभावशाली बन गई है। उन्होंने प्रथम बार उपन्यास साहित्य में एक नवीन रूप प्रस्तुत किया है। इसकी रचनाओं में मनोरंजन क्षीण है परन्तु कृषक तथा श्रमिक जीवन का सजीव चित्र कला कुशलता के साथ अंकित किया है। यहा प्रेमचन्द ने अपने देश का चित्रण द्वारा कथा साहित्य को पुष्ट किया है वहा प्रेमचन्द ने देश और विदेश के चित्रण द्वारा भी कथा साहित्य को पुष्ट किया है। प्रेमचन्द ने जमींदार, मिल–मालिक, पुलिस, पटवारी और राज कर्मचारियों कि वृतियों पर प्रहार किया है। गरीबों की गर्दन पर छुरी चलाने वालों पर तीव्र व्यंग्य किया है। उनकी मनोवेदना होरी के माध्यम से प्रस्तुत हुई है। अर्थाभाव के कारण ही विद्रोह की भावना जागृत होती है। मेहनतकश जनता की स्थिति का यथातथ्य चित्रण किया गया है।

'झूठासच' में बड़े–बड़े ऊपरी अधिकारियों का खोखलापन खुले आम प्रस्तुत किया है। ग्राम–सभ्यता का जीता–जागता प्रतीक किसान है, जो आर्थिक संकट, सामाजिक कुरिवाजों एवं धार्मिक अंध–श्रद्धाओं की चक्की में पिसा जा रहा था। इन सारी परिस्थितियों से प्रेमचन्द का नजदीक का परिचय क्षेत्र का इतना ही नहीं था, परन्तु इन परिस्थितियों से स्वयं गुजरे थे। अतः उनके उपन्यासों में सामाजिकता का फूट है। साथ–साथ स्वाभाविकता, विश्वसनीयता तथा कलात्मकता है। विषय वस्तु की दृष्टि से प्रेमचन्द के उपन्यासों में तत्कालीन, सामाजिक, राजनीतिक तथा ग्रामीण समस्यायें विविध आयामों में निरूपित की गई है। प्रेमचन्द के उपन्यासों में भी तत्कालीन सामाजिक राजनीतिक स्थिति का चित्रण किया गया है। वेश्यावृति, विधवा–विवाह, असंगत विवाह, किसान–जमींदार, मिल–मालिक मजदूर का संघर्ष एवं समस्यायें चित्रित की गई है। प्रेमचन्द सामान्य व्यक्ति को अपनी रचना का नायक बनाते है ं जबकि प्रेमचन्द सामान्य और असामान्य व्यक्ति को नायक के रुप में चुनते है और यथार्थ का आंकन करते है।

## प्रगति और क्रान्ति

प्रेमचन्द के अधिकांश उपन्यासों पर गांधीवाद का प्रभाव है। द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद और मार्क्स के अन्य सिद्धान्तों का प्रत्यक्ष

प्रभाव उनमें नगण्य है। इन कारणों से प्रेमचन्द को प्रगतिवादी या क्रान्तिकारी कलाकार मानने में आपत्ति हो सकती है। लेकिन 'प्रगतिवाद' के विशाल अर्थ को लें तो वे प्रगतिवादी ही है। जिस लेखक की कृतियों में भारतीय समाज की प्रत्येक श्रेणी के लोगों का चित्रण, उनकी प्रतिदिन की समस्याओं का प्रतिपादन, उनकी बलहीनताओं और सद्भावनाओं का प्रदर्शन, भारतीय संस्कृति का सही–सही मूल्यांकन और समाज को उसकी असंगतियों से बचाकर स्वस्थ और गतिशील बनाने का सन्देश उपलब्ध है, उसे प्रगतिशील मानने में कया आपत्ति हो सकती है? अगर समाज की विकासोन्मुख प्रवृत्तियों का दिग्दर्शन ही प्रगतिशीलता का लक्षण है तो प्रेमचन्द का गांधीवाद प्रगतिशीलता है, क्योंकि प्रेमचन्द के उपन्यासों के समय में हमारे राष्ट्र में सबसे बड़ी प्रेरक शक्ति गांधीवाद की थी। उसकी उपेक्षा करते तो प्रेमचन्द भारतीय समाज के विश्वस्त चित्रकार न होते।

## साहित्यिक सर्वेक्षण

प्रेमचन्द के उपन्यास पर 19वीं एवं बीसबीं सदी में कई बहुमूल्य कार्य हुए हैं, जिसमें सामाजिक गतिविधियों एवं राष्ट्रीयता की समस्याओं के विभिन्न तथ्यों को रेखांकित किया गया है। पूर्व अध्ययनों की समीक्षा के तहत विभिन्न आचार्यों द्वारा संपादित कार्यों का अवलोकन किया गया है।

डॉ. युगेश्वर, (1976) मुंशी प्रेमचंद का प्रमुख काम माना जाता है जो सामाजिक यथार्थवाद के लक्षणों से भरा है। निर्मला विवाह जैसे संवेदनशील सामाजिक मुद्दों से निपटकर मौजूदा भौतिकवादी सामाजिक मानदंडों पर ध्यान केंद्रित करती हैं। हमारा अध्ययन समकालीन भारतीय समाज में व्याप्त आर्थिक असमानता, निर्भरता, अस्वस्थ सामाजिक संबंधों और वर्ग उत्पीड़न की पड़ताल करता है जो अंततः परिवारों के विघटन का मूल कारण बन जाता है।

गुप्ता, प्रकाश चंद्र (1998) गीतांजलि पांडे, प्रमुख भारतीय नारीवादी आलोचकों में से एक, का तर्क है निर्मला शादी की समस्याओं, दहेज की मजबूरी और धन–दौलत की ताकत से पैदा हुई समस्या से जूझती है और इसके उत्पादन में भावनात्मक और मनोवैज्ञानिक परिणामों का एक पूरा सेट होता है। निर्मला अपने पुराने पति के संदेह का केंद्र बन जाती है, जो पहले वाली पत्नी से अपने बेटे के प्रति लगाव में घबराहट देखती है। निर्मला अंततः मर जाती है, एक बर्बाद जीवन को समाप्त करती है। ख्गीतांजलि 1989रू मुंशी प्रेमचंद ने तत्कालीन सामाजिक कुरीतियों को उजागर करके समकालीन भारतीय समाज का वास्तविक रूप से प्रतिनिधित्व किया है, जैसा कि ब्रिटिश औपनिवेशिक काल के सामंतवाद ने बनाया था।

सिगी, रेखा (2006) मुंशी प्रेमचंद आम लोगों की बोली में, वह स्पष्ट रूप से उपन्यास में किसान वर्गों की समस्या को उजागर करता है, जिन्हें बालचंद्र जैसे सामंती प्रभु के हाथों में वर्गीकृत किया जाता है। जैसा कि वह साहित्य को एक ऐसे काम के रूप में देखता है जो जीवन के सच्चे और अनुभवों को प्रभावशाली ढंग से व्यक्त करता है।उपरोक्त पुस्तकों में प्रेमचन्द के उपन्यास से संबन्धित विभिन्न तथ्यों का अवलोकन प्रस्तुत किया गया है ।

## उद्देश्य

प्रस्तावित शोध कार्य का महत्त्व एवं उसकी प्रासंगिकता और उद्देश्य निम्नलिखित तथ्यों पर आधारित है :–

इस अध्ययन के आधार पर प्रेमचन्द के उपन्यासों में सामाजिक समस्याओं का निरूपण का तथ्यपरक विश्लेषण किया गया है ।

## अध्ययन पद्धति

यह आलेख मुख्य रूप से वर्णन एवं विश्लेषण पर आधारित है । साथ ही ऐतिहासिक अध्ययन पद्धति के आधार पर विभिन्न संस्थाओं, कार्यालयों एवं पुस्तकालयों से तथ्यों का संकलन किया गया है । वर्तमान अध्ययन मुख्य रूप से द्वैतियक स्रोत पर ही आधारित है।

## निष्कर्ष

प्रेमचन्द का धर्म सम्बन्धी दृष्टिकोण आंतिकारी था। समाज में व्याप्त धार्मिक मान्यताओं पर प्रहार किया है। धर्म के कारण ही जातिभेद तथा ऊँच–नीच की भावना उपस्थित होती है। दीन–दुखियों की सेवा करके मानव–धर्मी का समर्थन किया है। प्रेमचन्द आध्यात्मिक दृष्टि से नास्तिक थे। उन्होंने धार्मिक आडम्बरों का विरोध किया है। मनुष्य जो मधुर स्वप्न लोक में विचरण करता है, वह अनेक इच्छा, आकांक्षा एवं महत्वकांक्षा को पूरी करने के लिए करता है। अपनी कल्पना एव ं स्वप्न को साकार करने के लिए प्रयत्न करता है परन्तु उसका स्वप्न साकार नही ं होता तब हताशा हो जाता है। ग्रामीण किसान सतत् श्रम करके निर्जीवसा बन जाते है।

## संदर्भ


1. डॉ. युगेश्वर, (1976) प्रेमचन्द समग्र, सम्पादक हिन्दी प्रचारक पब्लिकेशन, वाराणसी।
2. गुप्ता, प्रकाश चंद्र (1998)। प्रेम चंद - भारतीय साहित्य के निर्माता. साहित्य अकादमी, नई दिल्ली ।
3. सिगी, रेखा (2006)। मुंशी प्रेमचंद - एएचडब्ल्यू समीर श्रृंखला, हीरा प्रकाशन, नई दिल्ली ।
4. राय, अमृत (1991)। प्रेमचंदः उनका जीवन और समय , त्रिवेदी, हरीश द्वारा अनुवादित, ऑक्सफोर्ड यूनिवरसिटि प्रेस नई दिल्ली ।
5. नारायण, गोविंद (1999)। प्रेमचंद, उपन्यासकार और विचारक, प्रगति प्रकाशन, नई दिल्ली ।
6. नरवणे, विश्वनाथ एस. (1980) प्रेमचंद, उनका जीवन और कार्य , विकास प्रकाशन, नई दिल्ली ।
7. गाएं, आर.एस.(1977) भारतीय उपन्यास एक महत्वपूर्ण अध्ययन, अर्नाल्ड–हीनमैन प्रकाशन, नई दिल्ली ।
8. सिंह, अवधेश के (1993) समकालीन भारतीय कथा, क्रिएटिव बुक्स, नई दिल्ली ।